1

माता का अँचल

शिवपूजन सहाय

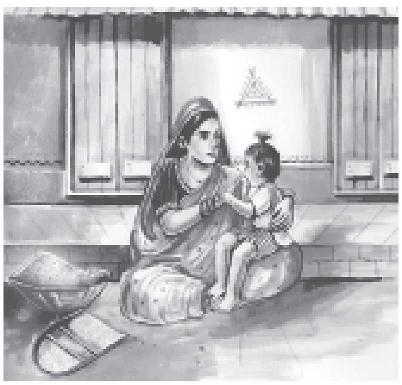

जहाँ लड़कों का संग, तहाँ बाजे मृदंग[1]
जहाँ बुड्ढों का संग, तहाँ खरचे का तंग

हमारे पिता तड़के[2] उठकर, निबट-नहाकर पूजा करने बैठ जाते थे। हम बचपन से ही उनके अंग लग गए थे। माता से केवल दूध पीने तक का नाता था। इसलिए पिता के साथ ही हम भी बाहर की बैठक में ही सोया करते। वह अपने साथ ही हमें भी उठाते और साथ ही नहला-धुलाकर पूजा पर बिठा लेते। हम भभूत का तिलक लगा देने के लिए उनको दिक करने लगते थे। कुछ हँसकर, कुछ झुँझलाकर और कुछ डाँटकर वह हमारे चौड़े लिलार[3] में त्रिपुंड[4] कर देते थे। हमारे लिलार में भभूत खूब खुलती थी। सिर में लंबी-लंबी जटाएँ थीं। भभूत रमाने से हम खासे 'बम-भोला' बन जाते थे।

पिता जी हमें बड़े प्यार से 'भोलानाथ' कहकर पुकारा करते। पर असल में हमारा नाम था 'तारकेश्वरनाथ'। हम भी उनको 'बाबू जी' कहकर पुकारा करते और माता को 'मइयाँ'।

जब बाबू जी रामायण का पाठ करते तब हम उनकी बगल में बैठे-बैठे आइने में अपना मुँह निहारा करते थे। जब वह हमारी ओर देखते तब हम कुछ लजाकर और मुसकराकर आइना नीचे रख देते थे। वह भी मुसकरा पड़ते थे।

पूजा-पाठ कर चुकने के बाद वह राम-राम लिखने लगते। अपनी एक 'रामनामा बही' पर हज़ार राम-नाम लिखकर वह उसे पाठ करने की पोथी के साथ बाँधकर रख देते। फिर

1. एक तरह का वाद्य यंत्र 2. प्रभात, सवेरा 3. ललाट 4. एक प्रकार का तिलक जिसमें ललाट पर तीन आड़ी या अर्धचंद्राकार रेखाएँ बनाई जाती हैं

पाँच सौ बार कागज़ के छोटे-छोटे टुकड़ों पर राम-नाम लिखकर आटे की गोलियों में लपेटते और उन गोलियों को लेकर गंगा जी की ओर चल पड़ते थे।

उस समय भी हम उनके कंधे पर विराजमान रहते थे। जब वह गंगा में एक-एक आटे की गोलियाँ फेंककर मछलियों को खिलाने लगते तब भी हम उनके कंधे पर ही बैठे-बैठे हँसा करते थे। जब वह मछलियों को चारा देकर घर की ओर लौटने लगते तब बीच रास्ते में झुके हुए पेड़ों की डालों पर हमें बिठाकर झूला झुलाते थे।

कभी-कभी बाबू जी हमसे कुश्ती भी लड़ते। वह शिथिल होकर हमारे बल को बढ़ावा देते और हम उनको पछाड़ देते थे। यह उतान[5] पड़ जाते और हम उनकी छाती पर चढ़ जाते थे। जब हम उनकी लंबी-लंबी मूँछें उखाड़ने लगते तब वह हँसते-हँसते हमारे हाथों को मूँछों से छुड़ाकर उन्हें चूम लेते थे। फिर जब हमसे खट्टा और मीठा चुम्मा माँगते तब हम बारी-बारी कर अपना बायाँ और दाहिना गाल उनके मुँह की ओर फेर देते थे। बाएँ का खट्टा चुम्मा लेकर जब वह दाहिने का मीठा चुम्मा लेने लगते तब अपनी दाढ़ी या मूँछ हमारे कोमल गालों पर गड़ा देते थे। हम झुँझलाकर फिर उनकी मूँछें नोचने लग जाते थे। इस पर वह बनावटी रोना रोने लगते और हम अलग खड़े-खड़े खिल-खिलाकर हँसने लग जाते थे।

उनके साथ हँसते-हँसते जब हम घर आते तब उनके साथ ही हम भी चौके पर खाने बैठते थे। वह हमें अपने ही हाथ से, फूल के एक कटोरे में गोरस और भात सानकर[6] खिलाते थे। जब हम खाकर अफर[7] जाते तब मइयाँ थोड़ा और खिलाने के लिए हठ करती थी। वह बाबू जी से कहने लगती—आप तो चार-चार दाने के कौर बच्चे के मुँह में देते जाते हैं; इससे वह थोड़ा खाने पर भी समझ लेता है कि हम बहुत खा गए; आप खिलाने का ढंग नहीं जानते—बच्चे को भर-मुँह कौर खिलाना चाहिए।

जब खाएगा बड़े-बड़े कौर, तब पाएगा दुनिया में ठौर[8]।

—देखिए, मैं खिलाती हूँ। मरदुए क्या जाने कि बच्चों को कैसे खिलाना चाहिए, और महतारी[9] के हाथ से खाने पर बच्चों का पेट भी भरता है।

यह कह वह थाली में दही-भात सानती और अलग-अलग तोता, मैना, कबूतर, हंस, मोर आदि के बनावटी नाम से कौर बनाकर यह कहते हुए खिलाती जाती कि जल्दी खा लो, नहीं तो उड़ जाएँगे; पर हम उन्हें इतनी जल्दी उड़ा जाते थे कि उड़ने का मौका ही नहीं मिलता था।

5. पीठ के बल लेटना 6. मिलाना, लपेटना, गूँधना 7. भर पेट से अधिक खा लेना
8. स्थान, अवसर 9. माता

जब हम सब बनावटी चिड़ियों को चट कर जाते थे तब बाबू जी कहने लगते–अच्छा, अब तुम 'राजा' हो, जाओ खेलो।

बस, हम उठकर उछलने-कूदने लगते थे। फिर रस्सी में बँधा हुआ काठ का घोड़ा लेकर नंग-धड़ंग बाहर गली में निकल जाते थे।

जब कभी मइयाँ हमें अचानक पकड़ पाती तब हमारे लाख छटपटाने पर भी एक चुल्लू कड़वा तेल[10] हमारे सिर पर डाल ही देती थी। हम रोने लगते और बाबू जी उस पर बिगड़ खड़े होते; पर वह हमारे सिर में तेल बोथकर[11] हमें उबटकर ही छोड़ती थी। फिर हमारी नाभी और लिलार में काजल की बिंदी लगाकर चोटी गूँथती और उसमें फूलदार लट्टू बाँधकर रंगीन कुरता-टोपी पहना देती थी। हम खासे 'कन्हैया' बनकर बाबू जी की गोद में सिसकते-सिसकते बाहर आते थे।

बाहर आते ही हमारी बाट जोहनेवाला बालकों का एक झुंड मिल जाता था। हम उन खेल के साथियों को देखते ही, सिसकना भूलकर, बाबू जी की गोद से उतर पड़ते और अपने हमजोलियों के दल में मिलकर तमाशे करने लग जाते थे।

तमाशे भी ऐसे-वैसे नहीं, तरह-तरह के नाटक! चबूतरे का एक कोना ही नाटक-घर बनता था। बाबू जी जिस छोटी चौकी पर बैठकर नहाते थे, वही रंगमंच बनती। उसी पर सरकंडे के खंभों पर कागज़ का चँदोआ[12] तानकर, मिठाइयों की दुकान लगाई जाती। उसमें चिलम के खोंचे पर कपड़े के थालों में ढेले के लड्डू, पत्तों की पूरी-कचौरियाँ, गीली मिट्टी की जलेबियाँ, फूटे घड़े के टुकड़ों के बताशे आदि मिठाइयाँ सजाई जातीं। ठीकरों के बटखरे और जस्ते के छोटे-छोटे टुकड़ों के पैसे बनते। हमीं लोग खरीदार और हमीं लोग दुकानदार। बाबू जी भी दो-चार गोरखपुरिए पैसे खरीद लेते थे।

थोड़ी देर में मिठाई की दुकान बढ़ाकर हम लोग घरौंदा बनाते थे। धूल की मेड़ दीवार बनती और तिनकों का छप्पर। दातून के खंभे, दियासलाई की पेटियों के किवाड़, घड़े के मुँहड़े की चूल्हा-चक्की, दीए की कड़ाही और बाबू जी की पूजा वाली आचमनी कलछी बनती थी। पानी के घी, धूल के पिसान और बालू की चीनी से हम लोग ज्योनार[13] तैयार करते थे। हमीं लोग ज्योनार करते और हमीं लोगों की ज्योनार बैठती थी। जब पंगत बैठ जाती थी तब बाबू जी भी धीरे-से आकर, पाँत के अंत में, जीमने[14] के लिए बैठ जाते थे। उनको बैठते देखते ही हम लोग हँसकर और घरौंदा बिगाड़कर भाग चलते थे। वह भी हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते और कहने लगते–फिर कब भोज होगा भोलानाथ?

10. सरसों का तेल 11. सराबोर कर देना 12. छोटा शामियाना 13. भोज, दावत
14. भोजन करना

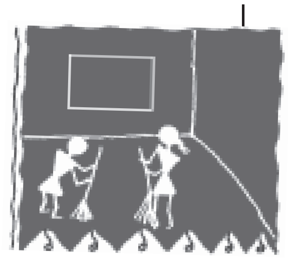

कभी-कभी हम लोग बरात का भी जुलूस निकालते थे। कनस्तर का तंबूरा बजता, अमोले[15] को घिसकर शहनाई बजायी जाती, टूटी चूहेदानी की पालकी बनती, हम समधी बनकर बकरे पर चढ़ लेते और चबूतरे के एक कोने से चलकर बरात दूसरे कोने में जाकर दरवाज़े लगती थी। वहाँ काठ की पटरियों से घिरे, गोबर से लिपे, आम और केले की टहनियों से सजाए हुए छोटे आँगन में कुल्हिए का कलसा रखा रहता था। वहीं पहुँचकर बरात फिर लौट आती थी। लौटने के समय, खटोली पर लाल ओहार[16] डालकर, उसमें दुलहिन को चढ़ा लिया जाता था। लौट आने पर बाबू जी ज्यों ही ओहार उघारकर दुलहिन का मुख निरखने लगते, त्यों ही हम लोग हँसकर भाग जाते।

थोड़ी देर बाद फिर लड़कों की मंडली जुट जाती थी। इकट्ठा होते ही राय जमती कि खेती की जाए। बस, चबूतरे के छोर पर घिरनी गड़ जाती और उसके नीचे की गली कुआँ बन जाती थी। मूँज की बटी हुई पतली रस्सी में एक चुक्कड़ बाँध गराड़ी पर चढ़ाकर लटका दिया जाता और दो लड़के बैल बनकर 'मोट' खींचने लग जाते। चबूतरा खेत बनता, कंकड़ बीज और ठेंगा हल-जुआठा। बड़ी मेहनत से खेत जोते-बोए और पटाए जाते। फसल तैयार होते देर न लगती और हम हाथोंहाथ फसल काट लेते थे। काटते समय गाते थे–

ऊँच नीच में बई कियारी, जो उपजी सो भई हमारी।

फसल को एक जगह रखकर उसे पैरों से रौंद डालते थे। कसोरे[17] का सूप बनाकर ओसाते और मिट्टी की दीए के तराजू पर तौलकर राशि तैयार कर देते थे। इसी बीच बाबू जी आकर पूछ बैठते थे–इस साल की खेती कैसी रही भोलानाथ?

बस, फिर क्या, हम लोग ज्यों-का-त्यों खेत-खलिहान छोड़कर हँसते हुए भाग जाते थे। कैसी मौज की खेती थी।

ऐसे-ऐसे नाटक हम लोग बराबर खेला करते थे। बटोही भी कुछ देर ठिठककर हम लोगों के तमाशे देख लेते थे।

जब कभी हम लोग ददरी के मेले में जाने वाले आदमियों का झुंड देख पाते तब कूद-कूदकर चिल्लाने लगते थे–

चलो भाइयो ददरी, सतू पिसान की मोटरी।

अगर किसी दूल्हे के आगे-आगे जाती हुई ओहारदार पालकी देख पाते, तब खूब ज़ोर से चिल्लाने लगते थे–

15. आम का उगता हुआ पौधा 16. परदे के लिए डाला हुआ कपड़ा
17. मिट्टी का बना छिछला कटोरा

रहरी[18] में रहरी पुरान रहरी, डोला के कनिया हमार मेहरी।

इसी पर एक बार बूढ़े वर ने हम लोगों को बड़ी दूर तक खदेड़कर ढेलों से मारा था। उस खसूट-खब्बीस की सूरत आज तक हमें याद है। न जाने किस ससुर ने वैसा जमाई ढूँढ़ निकाला था। वैसा घोड़ मुँहा आदमी हमने कभी नहीं देखा।

आम की फसल में कभी-कभी खूब आँधी आती है। आँधी के कुछ दूर निकल जाने पर हम लोग बाग की ओर दौड़ पड़ते थे। वहाँ चुन-चुनकर घुले-घुले 'गोपी' आम चाबते थे।

एक दिन की बात है, आँधी आई और पट पड़ गयी। आकाश काले बादलों से ढक गया। मेघ गरजने लगे। बिजली कौंधने और ठंडी हवा सनसनाने लगी। पेड़ झूमने और ज़मीन चूमने लगे। हम लोग चिल्ला उठे–

एक पइसा की लाई, बाज़ार में छितराई, बरखा उधरे बिलाई।

लेकिन बरखा न रुकी; और भी मूसलाधार पानी होने लगा। हम लोग पेड़ों की जड़ से धड़ से सट गए, जैसे कुत्ते के कान में अँठई[19] चिपक जाती है। मगर बरखा जमी नहीं, थम गई।

बरखा बंद होते ही बाग में बहुत-से बिच्छू नज़र आए। हम लोग डरकर भाग चले। हम लोगों में बैजू बड़ा ढीठ था। संयोग की बात, बीच में मूसन तिवारी मिल गए। बेचारे बूढ़े आदमी को सूझता कम था। बैजू उनको चिढ़ाकर बोला–

बुढ़वा बेईमान माँगे करैला का चोखा।

हम लोगों ने भी, बैजू के सुर-में-सुर मिलाकर यही चिल्लाना शुरू किया। मूसन तिवारी ने बेतहाशा खदेड़ा। हम लोग तो बस अपने-अपने घर की ओर आँधी हो चले।

जब हम लोग न मिल सके तब तिवारी जी सीधे पाठशाला में चले गए। वहाँ से हमको और बैजू को पकड़ लाने के लिए चार लड़के 'गिरफ्तारी वारंट' लेकर छूटे। इधर ज्यों ही हम लोग घर पहुँचे, त्यों ही गुरु जी के सिपाही हम लोगों पर टूट पड़े। बैजू तो नौ-दो ग्यारह हो गया; हम पकड़े गए। फिर तो गुरु जी ने हमारी खूब खबर ली।

बाबू जी ने यह हाल सुना। वह दौड़े हुए पाठशाला में आए। गोद में उठाकर हमें पुचकारने और फुसलाने लगे। पर हम दुलारने से चुप होनेवाले लड़के नहीं थे। रोते-रोते उनका कंधा आँसुओं से तर कर दिया। वह गुरु जी की चिरौरी[20] करके हमें घर ले चले। रास्ते में फिर हमारे साथी लड़कों का झुंड मिला। वे ज़ोर से नाचते और गाते थे–

18. अरहर 19. कुत्ते के शरीर में चिपके रहने वाले छोटे कीड़े, किलनी
20. दीनतापूर्वक की जाने वाली प्रार्थना, विनती

माई पकाई गरर–गरर पूआ, हम खाइब पूआ, ना खेलब जुआ।

फिर क्या था, हमारा रोना-धोना भूल गया। हम हठ करके बाबू जी की गोद से उतर पड़े और लड़कों की मंडली में मिलकर लगे वही तान-सुर अलापने। तब तक सब लड़के सामनेवाले मकई के खेत में दौड़ पड़े। उसमें चिड़ियों का झुंड चर रहा था। वे दौड़-दौड़कर उन्हें पकड़ने लगे, पर एक भी हाथ न आई। हम खेत से अलग ही खड़े होकर गा रहे थे–

राम जी की चिरई, राम जी का खेत, खा लो चिरई, भर-भर पेट।

हमसे कुछ दूर बाबू जी और हमारे गाँव के कई आदमी खड़े होकर तमाशा देख रहे थे और यही कहकर हँसते थे कि 'चिड़िया की जान जाए, लड़कों का खिलौना'। सचमुच 'लड़के और बंदर पराई पीर नहीं समझते।'

एक टीले पर जाकर हम लोग चूहों के बिल से पानी उलीचने लगे।

नीचे से ऊपर पानी फेंकना था। हम सब थक गए। तब तक गणेश जी के चूहे की रक्षा के लिए शिव जी का साँप निकल आया। रोते-चिल्लाते हम लोग बेतहाशा भाग चले! कोई औंधा गिरा, कोई अंटाचिट। किसी का सिर फूटा, किसी के दाँत टूटे। सभी गिरते-पड़ते भागे। हमारी सारी देह लहूलुहान हो गई। पैरों के तलवे काँटों से छलनी हो गए।

हम एक सुर से दौड़े हुए आए और घर में घुस गए। उस समय बाबू जी बैठक के ओसारे[21] में बैठकर हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। उन्होंने हमें बहुत पुकारा पर उनकी अनसुनी करके हम दौड़ते हुए मइयाँ के पास ही चले गए। जाकर उसी की गोद में शरण ली।

'मइयाँ' चावल अमनिया[22] कर रही थी। हम उसी के आँचल में छिप गए। हमें डर से काँपते देखकर वह ज़ोर से रो पड़ी और सब काम छोड़ बैठी। अधीर होकर हमारे भय का कारण पूछने लगी। कभी हमें अंग भरकर दबाती और कभी हमारे अंगों को अपने आँचल से पोंछकर हमें चूम लेती। बड़े संकट में पड़ गई।

झटपट हल्दी पीसकर हमारे घावों पर थोपी गई। घर में कुहराम मच गया। हम केवल धीमे सुर से "साँ...स...साँ" कहते हुए मइयाँ के आँचल में लुके चले जाते थे। सारा शरीर थर-थर काँप रहा था। रोंगटे खड़े हो गए थे। हम आँखें खोलना चाहते थे; पर वे खुलती न थीं। हमारे काँपते हुए ओंठों को मइयाँ बार-बार निहारकर रोती और बड़े लाड़ से हमें गले लगा लेती थी।

इसी समय बाबू जी दौड़े आए। आकर झट हमें मइयाँ की गोद से अपनी गोद में लेने लगे। पर हमने मइयाँ के आँचल की—प्रेम और शांति के चँदोवे की—छाया न छोड़ी...।

प्रश्न-अभ्यास

1. प्रस्तुत पाठ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बच्चे का अपने पिता से अधिक जुड़ाव था, फिर भी विपदा के समय वह पिता के पास न जाकर माँ की शरण लेता है। आपकी समझ से इसकी क्या वजह हो सकती है?
2. आपके विचार से भोलानाथ अपने साथियों को देखकर सिसकना क्यों भूल जाता है?
3. आपने देखा होगा कि भोलानाथ और उसके साथी जब-तब खेलते-खाते समय किसी न किसी प्रकार की तुकबंदी करते हैं। आपको यदि अपने खेलों आदि से जुड़ी तुकबंदी याद हो तो लिखिए।
4. भोलानाथ और उसके साथियों के खेल और खेलने की सामग्री आपके खेल और खेलने की सामग्री से किस प्रकार भिन्न है?
5. पाठ में आए ऐसे प्रसंगों का वर्णन कीजिए जो आपके दिल को छू गए हों?
6. इस उपन्यास अंश में तीस के दशक की ग्राम्य संस्कृति का चित्रण है। आज की ग्रामीण संस्कृति में आपको किस तरह के परिवर्तन दिखाई देते हैं।
7. पाठ पढ़ते-पढ़ते आपको भी अपने माता-पिता का लाड़-प्यार याद आ रहा होगा। अपनी इन भावनाओं को डायरी में अंकित कीजिए।

21. बरामदा 22. साफ़, शुद्ध

8. यहाँ माता-पिता का बच्चे के प्रति जो वात्सल्य व्यक्त हुआ है उसे अपने शब्दों में लिखिए।
9. **माता का अँचल** शीर्षक की उपयुक्तता बताते हुए कोई अन्य शीर्षक सुझाइए।
10. बच्चे माता-पिता के प्रति अपने प्रेम को कैसे अभिव्यक्त करते हैं?
11. इस पाठ में बच्चों की जो दुनिया रची गई है वह आपके बचपन की दुनिया से किस तरह भिन्न है?
12. फणीश्वरनाथ रेणु और नागार्जुन की आंचलिक रचनाओं को पढ़िए।